पूज्य श्री लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार, गाथा १३, ता. २५-१२-१९८९
जयपुर, प्रवचन नंबर २०९

अपने उपकारी पूज्य गुरुदेव की हाजिरी में उनके जो प्रवचन टेप में (रिकॉर्ड हुये) हैं, वो अठारहवीं बार के टेप के प्रवचन को पुस्तक आकार के रूप में बाहर निकालना, ऐसी जाति का निर्णय मुम्बई के मंडल ने किया है और एक ट्रस्ट की रचना हुई। इस ट्रस्ट का नाम है, "श्री कुंद-कुंद कहान परमागम प्रवचन ट्रस्ट, ज़वेरी बाज़ार।" गुरुदेव की हाजिरी में स्थापना हुई और गुरुदेव के व्याख्यानों को टेप ऊपर से अक्षर-अक्षर (लिख) लेना और उसका संकलन करना और छपवाना, इस प्रकार का निर्णय हुआ। तब उस वक्त ट्रस्ट तो नया ही खड़ा हुआ था। उसके पास एक पैसा भी नहीं था। तो इस आयोजन के खर्चे के लिए क्या करना? तो ट्रस्टियों ने निर्णय किया कि इसके लिए अपने को एक फंड बनाना चाहिए।

रूपये का फंड नहीं, (बल्कि) चाँदी (का)। एक किलो चाँदी, दो किलो, पाँच किलो, दस किलो। एक किलो का भाव २००० रूपये नक्की करने में आया। वहाँ चाँदी की बरसात हुई। ढगलाबंध (एकट्ठी), कोई एक किलो, पाँच किलो, लिखनेवाला थक जाये, क्योंकि ये गुरुदेव के व्याख्यानों को इसमें छपवाना है। अब उसका संकलन कौन करे? टेप ऊपर से लिख तो सकें, अक्षर-अक्षर, कोई भी लिख सके। लेकिन उसका संकलन कौन करे? ये भी एक बड़ी जवाबदारीवाला प्रश्न था। उसमें मुमुक्षु के भाग्य-योग्य से, अपने को एक निरभिमान, निरभिमान व्यक्ति, पूज्य गुरुदेव के (एक) अनन्य भक्त (मिले), भक्त-रत्न कहूँ तो भी अतिश्योक्ति नहीं। ऐसे अपने रमणभाई, जो बाबूभाई के मामा हैं, इधर बैठे हैं। बैठे हैं (को हिंदी में) क्या कहें? हिंदी में ठीक है? अच्छा! हिंदी में बैठे हैं।, चलेगा ना? अच्छा! बैठे हैं इधर। बैठे हैं। अच्छा! ज़रा सुधार करना। पंडित जी!

ऐसा आयोजन हुआ और गुरुदेव की हाज़िरी में ही प्रवचनों का एक भाग, दो भाग, दो भाग तो याद है, अभी तीन भाग भी निकल चुके (हैं)। बहुत गुरुदेव को खुशी हुई कि जब ये ठराव किया तो बहुत खुशी हुई। तो आहिस्ते-आहिस्ते ११ भाग निकल चुके हैं। प्रवचन रत्नाकर ११ भाग, समयसार शास्त्र, परमागम शास्त्र, उसके ऊपर अठारहवीं बार के व्याख्यान। बाद में उन्नीसवीं बार के व्याख्यान तो हुए।

तो उसमें, इन व्याख्यानों में, एक समयसार की जयसेनाचार्य भगवान की टीका (की) ३२० गाथा, प्रवचनसार गाथा नंबर ११४ और कलश-टीका (का) कलश नंबर २७१, इन दो गाथा और एक कलश के ऊपर, पूज्य गुरुदेव के तेरह व्याख्यान हुए थे। तेरहपंथी हैं ना? और गुणस्थान भी तेरहवाँ आने वाला है ना अल्पकाल में गुरुदेव को, केवलज्ञान होने वाला है। आहाहा! जिसको सम्यग्दर्शन होता है, उसको केवलज्ञान तो होता ही है। तो ऐसे तेरह व्याख्यान एक शास्त्र में छपे हैं और आज तो बाहर पड़े हैं। आ गए हैं भावनगर से। उसकी बिक्री हो रही है, बिक्री में है, स्टाल में।

उसमें क्या माल भरा है? बहुत माल भरा है! उसके तीन भाग हैं। इसमें ३२० गाथा तो आत्मा का स्वरूप क्या है, वो बतानेवाली है (गाथा है)। ध्येय क्या है, ध्येय, ध्यान का विषय? सारा जगत ध्येय में भूल (कर) रहा है। वो ध्येय का स्वरूप क्या है? (वो) ३२० गाथा में (आया है), गुरुदेव का व्याख्यान इसमें है। नौ व्याख्यान हैं। आठ और एक नौ। और ये क्या है? कि जब मुकुंदभाई का लड़का, निरंजनभाई अमेरिका से आए थे, अतुल, अतुलभाई, उस टाईम, तो वो वीडिओ (बनाने के लिए) लेकर आए थे। वीडिओ इतना प्रचलित नहीं था तो वो लेकर आए थे और कुदरती ३२० गाथा उस टाईम चलती थी। तो गुरुदेव की मस्ती ३२० गाथा में, जिसने प्रत्यक्ष सुना है, वो जानता है।

३२० गाथा में आचार्य भगवान फ़रमाते हैं कि यह आत्मा, सभी के आत्मा की बात है। आज ५६ कुमारी ने यह प्रश्न किया कि आत्मा कैसा है और कहाँ रहता है? दो प्रश्न आए। आत्मा कैसा है और कहाँ रहता है? दोनों प्रश्न प्रयोजनभूत हैं। तो ये आत्मा के स्वरूप की बात अभी १३ गाथा आयेगी तब मैं स्वाध्यायरूप से लूँगा। अभी तो ये १३ व्याख्यान हैं, इसमें ३२० गाथा ध्येयरूप है। और ११४ गाथा प्रवचनसार की (उसका विषय है कि) ध्यान कैसे हो सकता है। ध्येय तो बताया मगर ध्यान कैसे करें? आजकल शिविर लगती है, ध्यान की, बहुत। बहुत ध्यान की शिविर लगती है।

कभी कोई मिलता है तो मैं पूछता हूँ कि ध्यान की शिविर में ध्येय क्या बताते हैं? क्योंकि ध्येय के बिना ध्यान होता नहीं और ध्येय के स्पष्ट ज्ञान बिना धर्म-ध्यान प्रगट होता नहीं है। तो ध्येय क्या है? वो सर्वज्ञ भगवान सिवाय और आचार्य भगवान अनुभवी के सिवाय, कोई जीव ध्येय का स्वरूप कह सकता नहीं। ऐसे ३२० गाथा में ध्येय का स्वरूप आया (और) ११४वीं गाथा में ध्यान कैसे करना, कैसे ध्यान करना और किसका ध्यान करना (यह आया)। किसका ध्यान करना और कैसे ध्यान करना। ध्येय का क्या स्वरूप है और ध्यान का क्या (स्वरूप है)। ध्येय तो द्रव्यरूप है और ध्यान तो निर्मल पर्यायरूप है और बाद में ध्येय का ध्यान होता है तो वो पुरुष ध्याता हो जाता है। ध्याता, ध्यान करनेवाला, सहज है, कर्ता नहीं (है) उसमें। आहाहा!

ध्येय और ध्यान और ध्याता की हुई एकता, इसका नाम धर्म-ध्यान है। ध्येय का लक्षण जुदा, ध्यान का लक्षण जुदा (और) ध्याता का लक्षण जुदा होने पर भी, अनुभव के काल में, कौन ध्येय, कौन ध्यान और कौन ध्याता, ऐसे तीन विकल्प रहते नहीं हैं। ध्येय भी आत्मा और ध्यान भी आत्मा और ध्याता भी आत्मा, ऐसा ध्यान के काल में ध्येय पूर्वक आत्मा ज्ञेय हो जाता है। आहाहा! ध्येय तो ध्रुव है और ज्ञेय उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तंसत् हो जाता है। समयसार में आता है तो प्रवचनसार और तत्त्वार्थसूत्र का भी ज्ञान उसमें अनुभवी को आ जाता है, कोई बाकी रहता नहीं है। ऐसा ये अपूर्व है। मैं तो कहता हूँ कि सारी ज़िंदगी यह पढ़ने जैसा है। ये १३ व्याख्यान सारी ज़िंदगी पढ़ने जैसे हैं। उसका संकलन भी रमणभाई ने किया है, उसका संकलन भी (रमणभाई ने किया है) और रमणभाई तो इसकी प्रशंसा करते-करते थकते नहीं (हैं)। ओहोहो! ये चीज़ क्या निकल गयी! अपूर्व चीज़ है। सब माल उसमें भरा है, तो वो बिक्री में रखी है। आ गई है पुस्तक, ले लेना। ७ रुपये की क़ीमत है, ५ रूपये में मिलेगी।

अभी ५६ राजकुमारियों का प्रश्न है कि आत्मा कैसा है? कैसा है, (ऐसा) कौन पूछते हैं, खबर है, मालूम है? जिसने देखा नहीं आत्मा को, जिसने आत्मा को देखा नहीं है, ऐसे अज्ञानी प्राणी आत्मा को

देखने के लिए उसकी रुचि पैदा हो जाती है, तो प्रश्न करता है कि आत्मा कैसा है और कहाँ रहता है वो आत्मा? दो प्रश्न हैं।

आत्मा का स्वरूप क्या है? कि आत्मा अनादि-अनंत शुद्ध ही है, पूर्ण ही है, आत्मा अकर्ता और अभोक्ता ही है। उस आत्मा का स्वरूप (कैसा है कि) वो आत्मा चैतन्यमयी है। तीनों काल चैतन्य ही रहता है। अचेतन के संयोग में आने पर भी वो अचेतन हो सकता नहीं है। उस अचेतन का असर भी उसके ऊपर आता नहीं है, कुछ। उसका अचेतन का प्रभाव चेतन आत्मा (के) ऊपर पड़ता नहीं है, ऐसा त्रिकाल चैतन्य परमात्मा है।

और कहाँ रहता है? दूसरा प्रश्न है। व्यवहारनय कहता है कि शरीर में जीव रहता है, शरीर में रहता है। इस लकड़ी में नहीं रहता है, आकाश में नहीं रहता है, शरीर में (रहता है)। कौन कहता है? व्यवहारनय। मोक्षमार्गप्रकाशक के अंदर एक सूत्र आया है, सूत्र। आहाहा! आचार्यकल्प हो गये, ज्ञानी-धर्मात्मा। अल्पकाल में तो उनका मोक्ष होनेवाला निश्चित है। आहाहा! उन्होंने कहा कि जितना निश्चयनय का निरूपण है, उसको सत्यार्थ जानकर, मानकर, श्रद्धान करना। आहाहा! और व्यवहारनय का जितना भी कथन, निश्चयनय का कथन तो बहुत कम होता है और व्यवहारनय के कथन का तो पार ही नहीं है। आहाहा! इतना व्यवहारनय कथन करता है, तो वो व्यवहारनय का जितना कथन आवे जिनागम में.... निश्चयनय और व्यवहारनय जिनागम में हैं, अन्यमत में तो है नहीं। अन्यमत की बात तो छोड़ दो। ओहोहो! और नय श्रुतज्ञान का अंश है। श्रुतज्ञान प्रमाण अनुभव ज्ञान है। उसके दो नय, निश्चयनय और व्यवहारनय। व्यवहारनय जो कथन करता है, जितना व्यवहारनय का कथन है वो असत्यार्थ जानकर उसका श्रद्धान छोड़ देना। क्या कहा? श्रद्धान छोड़ने की बात है।

आज चर्चा में आया था ना कि पुण्य छोड़ना? कि पुण्य छोड़ने की बात नहीं है। पुण्य की रुचि छोड़। पुण्य तो आख़िर में छूट जायेगा। छूटनेवाला तो है ही, थोड़ी देर लगती है। और पुण्य से धर्म मानना छोड़ दे। ये पुण्य छोड़ दे और पाप करे, ऐसा उपदेश अन्यमत में भी नहीं है तो जिनागम में तो कहाँ से आवे? व्यवहारनय का जितना कथन है वो असत्यार्थ, अभूतार्थ है, झूठा कथन है। असत्यार्थ विद्वान की भाषा है। असत्यार्थ है ना, वो विद्वान इधर बैठे हैं ना, वो विद्वान लोग ऐसी भाषा बोलते हैं, असत्यार्थ है। समझे? अब असत्यार्थ (कहने) में (तो) थोड़े जीव समझें और राजमल जी ४०० वर्ष पहले जैन-धर्म के मर्मी, अनुभवी हो गये। उन्होंने तो सीधा-साधा व्यवहारनय झूठा है, व्यवहारनय झूठा है। असत्यार्थ, असत्यार्थ का ही भावार्थ है। असत्यार्थ कहो कि (झूठा कहो)। आहाहा! कोई कहे कि असत्यार्थ कहो तो ठीक। झूठा-झूठा मत कहो। आहाहा! तो 'असत्य', यानि (कि) 'है' उससे उल्टा। झूठी बात कहे, उसका नाम व्यवहारनय।

वो क्या, प्रकरण कैसे लेना है कि आत्मा कैसा है और कहाँ रहता है? वो कहाँ रहता है उसकी चर्चा चलती है। कहाँ रहता है? व्यवहारनय कहता है कि देह में रहता है आत्मा। सौ टका झूठी बात है। कोई कहे कि व्यवहारनय से तो, व्यवहार सत्यार्थ है कि नहीं? अरे! व्यवहारनय से व्यवहार सत्यार्थ है तो निश्चयनय से असत्यार्थ है, वहाँ (जाकर) पूर्णविराम होता है। आहाहा! तेरे साध्य की सिद्धि निश्चय के बिना तीन काल में होगी नहीं।

कहाँ रहता है? (छप्पन) कुमारी का प्रश्न है। भगवान आत्मा कहाँ रहता है? व्यवहारनय कहता है देह में रहता है। अच्छा? आगे, आगे कोई? हाँ! आठ कर्म में आत्मा रहता है। व्यवहारनय आगे बढ़ता है कि आत्मा राग में रहता है। सौ टका झूठी बात है। एक समय मात्र भी ये मलिनभाव में पवित्र परमात्मा आता ही नहीं है। यह तेरी भ्राँति हो गयी। वो तो तेरी भ्राँति है। भ्राँति होने से आत्मा अपने स्वभाव को छोड़ता नहीं है और विभाव में आता नहीं है। विभाव अभी शब्द आया। राग से आगे थोड़ा और है। आहाहा!

नयचक्र निकाला है। मैंने देखा, अच्छा है। अच्छा है। मेहनत बहुत करी पंडित जी ने। आहाहा! कि आत्मा कहाँ रहता है ऐसा (छप्पन) कुमारी का प्रश्न है ना, छोटी-छोटी (छप्पन) कुमारी का। आहाहा! कहाँ रहता है आत्मा? देह में। नहीं, निश्चयनय कहता है कि देह में रहता नहीं है। वो झूठी बात करता है। कर्म में रहता है आत्मा? कि नहीं रहता है। कर्म जड़ है, जड़ में चेतन रहता नहीं है। राग में रहता है? राग मलिनभाव है। पवित्र परमात्मा राग में रहता नहीं है। अरे! संवर, निर्जरा और मोक्ष? एक समय की निर्मल पर्याय, उसमें भी सचमुच रहता नहीं। वो तो अपना चैतन्यस्वभाव, परमपारिणामिकभाव में स्थित है और ऐसा जब दृष्टि में आये द्रव्य, तब जो शुद्धोपयोग उत्पन्न होता है, तो उसमें रहता है। मगर राग में तो रहता (ही) नहीं है।

एक बात इतनी सुंदर है कि उपयोग में उपयोग है। शुद्धोपयोग के पहले। मोक्षमार्गप्रकाशक कर्ता ने लिखा है कि उपयोग तो स्वभाव का अंश है। सब जीव को उपयोग प्रगट होता है, उपयोग। उपयोग में उपयोग है। आत्मा कहाँ रहता है? कि ज्ञान में रहता है। किस ज्ञान में रहता है? कि उपयोग रूप ज्ञान जो है उसमें रहता है आत्मा। और ऐसा जब भान होता है तो शुद्धोपयोग उत्पन्न होता है, तो शुद्धोपयोग में ही आत्मा रहता है। संवर-निर्जरा-मोक्ष में ही आत्मा रहता है। दृष्टि अपेक्षा से वो स्वभाव छोड़कर विभाव में नहीं जाता है। मगर ज्ञेय-प्रधान कथन से देखो तो संवर, निर्जरा, मोक्ष में आत्मा रहता है। आहाहा! सर्वथा रहता नहीं है, कथंचित् रहता है। सर्वथा तो गुणों में रहता है। आहाहा!

ऐसा प्रश्न आया, उसका उत्तर १३ नंबर की गाथा में आचार्य भगवान (ने कहा)। वो, वो ही उसका ही उत्तर है १३ नंबर की गाथा में। आत्मा का स्वरूप क्या है और कहाँ रहता है? नवतत्त्व में रहता है आत्मा? कि नवतत्त्व में आत्मा रहता नहीं है क्योंकि वो कर्मकृत-भाव है। (वो) एक समय की पर्याय है और वह विभाव है, यानि विशेष भाव है। विभाव यानि (विशेष भाव)। सामान्य तत्त्व विभाव में रहता है वो व्यवहारनय का कथन है। और सामान्य स्वभाव सामान्य में रहता है वो निश्चयनय का कथन है। स्वभाव संयोग में रहता है वो व्यवहारनय का कथन है। संवर, निर्जरा और मोक्ष संयोग है। आहाहा! संयोग यानि उत्पाद-व्यय। है शुद्ध पर्याय, निर्मल पर्याय। राग में तो रहता (नहीं है)। राग में रहता है, राग में आत्मा जिसको दिखता है वो तो अँधा पुरुष है, अज्ञानी है। उसको तो मालूम नहीं। आहाहा! अनुभव के पहले राग में आत्मा रहता नहीं है, ज्ञान में रहता है, ऐसा ले पहले। उपयोग में रहता है, राग में रहता नहीं है।

कुमारी का प्रश्न है कहाँ रहता है? आहाहा! व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम में आत्मा रहता है। बिल्कुल रहता नहीं है। रहता है तो निश्चय रत्नत्रय का परिणाम जो स्वाश्रित है, उसमें कथंचित् रहता है।

(उसमें अगर) सर्वथा रहे तो, तो पर्याय के नाश से द्रव्य का नाश हो जाये, ऐसा नहीं है। तो आचार्य भगवान १३ नंबर की गाथा में... अद्‌भुत गाथा है, सम्यग्दर्शन की गाथा है। वहाँ तक अपना आया है कि **(व्यवहार) नय से कहे जाते हैं ऐसे ये नवतत्त्व, जीव-अजीव** और **पुण्य,** तीन बोल आए, चौथा **पाप।**

ये सारा जगत पाप को एक प्रकार का जानता है। मगर पाप दो प्रकार का है। वो तो संज्ञी पंचेंद्रिय जीव कोई-कोई वक़्त, मिथ्यात्व का पाप क्या है, वो तो कोई वक़्त कोई जीव विचार में लेता है। बाकी हिंसा, झूठ, चोरी व्यभिचार। आहाहा! इसका एक पाप प्रसिद्ध है, जगत को। मिथ्यात्व का पाप जगत को प्रसिद्ध नहीं है। वो तो जब ज्ञानी का जन्म होता है, तब वो (मिथ्यात्व का) पाप बताता है। वो मूल पाप है (और) वो उत्तर पाप है। उत्तर पाप तो निकल जानेवाला है मगर कब निकले? कि (जब) मूल पाप निकले तो ही (उत्तर पाप निकले)। सारे संसार की जड़ मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व का परिणाम जड़ है। इसका स्वरूप तो.... ये पंचाध्यायी (शास्त्र में है) कल बताया था। आज कोई नए-नए भी बहुत भाई आए हैं तो फिर से दो मिनट (ले लेते हैं)। आहाहा! एक घंटे का टाईम है ना? बहुत टाईम दे दिया, उदार (होकर दे) दिया। हमको लगता था कि आधे घंटे का टाईम मिलेगा, मगर एक घंटे का टाईम हमको मिल गया। आहाहा! पंडित जी उदार हैं ना, उदार हैं। आहाहा!

ये धर्म उदारता का है। ये धर्म उदारता का है। आहाहा! भूल जाना, वो महान उदारता है। आहाहा! किसी का दोष देखना नहीं। आहाहा! एक समय की पर्याय देखने जैसी नहीं है। अनंतकाल से पर्याय को देखा मगर पर्याय से भिन्न भगवान आत्मा, एक समय (भी) आत्मा को देखा नहीं। अभी ज्ञेय फेर दे तू। गुजराती में 'ज्ञेयने फेरवी दे'। 'ज्ञेयने फेरवी दे' यानि हिंदी में क्या? ज्ञेय को? हाँ! ये सारे छह द्रव्य मेरे ज्ञेय हैं, नवतत्त्व मेरा ज्ञेय है, परिणाम मेरा ज्ञेय है, गुणस्थान ज्ञेय है, मार्गणास्थान ज्ञेय है। आहाहा! भले उपादेय न हो तो कुछ नहीं। उपादेय तो हम नहीं कहते हैं। उपादेय तो हम कहाँ कहते हैं, पर्याय को? द्रव्य को उपादेय कहते हैं और पर्याय तो उपादेय नहीं है, तो क्या है? कि हेय है। अच्छा भैया! हेय है। दो बात में तो हाँ बोलता है। मगर वो ज्ञेय नहीं है, वो (उसमें) हाँ बोलता नहीं है, तो हालत होती नहीं है। ज्ञेय तो, परमात्मा स्वज्ञेय है। आहाहा!

ऐसा कल सुना कि पंडित जी ने कहा कि ध्रुव को देखे पर्याय तो ही काम होगा, ऐसा व्याख्यान में बोला होगा। एक भाई आए कि पंडित जी ने ऐसा कहा। तो पंडित जी तो ऐसा ही कहें ना? गुरु का भक्त कोई राग करो, ऐसा कहे? आहाहा! क्या कहा? 'ज्ञेय फेरवी नाख तू' कि पर्याय उपादेय तो नहीं। पर्याय उपादेय नहीं है। पर्याय हेय है। हेय है कि ज्ञेय है? कि हेय भी नहीं है और ज्ञेय भी नहीं है। ऐसा जानने से क्या मिला? क्योंकि उपयोग ज्ञेय के बिना रह सकता नहीं है, और पर को जानने का निषेध आते ही उपयोग स्वज्ञेय में आ जाता है। ऐसा लाभ होता है। पंडित जी ने कहा कि इसमें क्या लाभ हुआ? आत्मा, राग ज्ञेय नहीं है। आहाहा! ये उपादेय के नाम में ठगा गया और फिर हेय के नाम में भी लक्ष वहाँ (गया) और ज्ञेय के नाम पर भी (वहीं गया)। लक्ष वहाँ का वहाँ रहा, परभाव के ऊपर रहा, स्वभाव के ऊपर लक्ष आता नहीं। लेकिन १२वीं गाथा में लिखा है ना कि व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहा! देखो अज्ञानी का तर्क। लेकिन ११वीं गाथा के बाद में १२वीं गाथा आई, ये भूल

गया। ११वीं गाथा में तो वो परिणाम का लक्ष छोड़कर त्रिकाली द्रव्य का लक्ष आया तो अनुभव हुआ। आहाहा! STOP @31:24 तो वो ज्ञान प्रगट हुआ। वो ज्ञान आत्मा को जानते-जानते, कोई-कोई को किसी वक्त जाना हुआ प्रयोजनवान (होता है)। ये हमेशा के लिए (होता नहीं)। आहाहा!

एक पर्याय ज्ञेयरूप से भी रखने जैसी नहीं। ज्ञेयरूप से भी जब तक जानने में आयेगी तब तक परिणति तो रहेगी, लेकिन शुद्धोपयोग आयेगा नहीं। चारित्र नहीं आता। अहाहा! ये तो कामचलाऊ, टेम्परेरी (temporary), स्वरूप में शुद्धोपयोग टिकता नहीं है, बाहर आ जाता है तो व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहा! उसमें एक मलाड (मुंबई) के अंदर एक विद्वान संस्कृत के थे, नाम भी ख्याल है। तो वो गुरुदेव के पास आये कि साहेब, ये व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा है अनुवाद। वो तो ठीक है जाना हुआ प्रयोजनवान है। मगर संस्कृत की अपेक्षा से तो वो जणाया (जानने में आया) हुआ प्रयोजनवान है। जाना हुआ नहीं, जानने में आया हुआ। गुरुदेव ने फ़रमाया, हमको इष्ट है वो बात तो। वो बात तो (हमको इष्ट है), उसमें मर्म है।

पर्याय को मैं जानता हूँ तो पर्याय का लक्ष होगा और पर्याय मेरे ज्ञान में जानने में आती है, तो ज्ञान द्रव्य के ऊपर से छूटेगा नहीं, दृष्टि नहीं छूटेगी। आहाहा! मर्म है। लोकालोक को जानते हैं केवली भगवान कि लोकालोक ज्ञान में जानने में आ जाते हैं? बड़ा फेर, आसमान और ज़मीन जितना फेर है। आहाहा!

नियमसार की ३८वीं गाथा में आचार्य भगवान सविकल्पदशा में हैं, वो फ़रमाते हैं कि ये जो सात तत्त्वों का समूह है वो परद्रव्य है। वो तो ठीक परद्रव्य है, मगर वो परद्रव्य से मैं विमुख हूँ, परद्रव्य से मैं विमुख होकर आत्मा को जानता हूँ। आहाहा! इस पर्याय का.. यानि पर्याय के लक्ष से पर्याय यथार्थरूप से जानने में नहीं आती है। द्रव्य के लक्ष से वो पर्याय जानने में आ जाती है। जैसे स्वपरप्रकाशक स्वभाव है, द्रव्य भी जानने में आता है और पर्याय भी जानने में आती है। पर्याय को ये जाने, उससे पर्याय जानने में आ जाये, ऐसा लेना अधिक अच्छा है। उसमें अंतर्मुखता आने की पूरी शक्यता (संभावना) रहती है। पर्याय को जानता है, उसमें बहिर्मुखता है। आहाहा!

परद्रव्य से जो परान्मुखपराङ्मुख है और निजशक्ति में जो तीक्ष्णबुद्धि जिसकी लग गई है....आचार्य भगवान सविकल्पदशा में कहते हैं कि नवतत्त्व के भेद से मैं पराङ्मुख हूँ। मगर निर्विकल्पध्यान में तो पराङ्मुख होता है। सविकल्पदशा में पराङ्मुख होता है? हाँ! पराङ्मुख होता है, पराङ्मुख रहता ही है। सन्मुख होता ही नहीं है। अनुभवी की बात तो अनुभवी ही जाने, बिन अनुभवी क्या जाने? नहीं जाने तो वांधा (परेशानी) नहीं मगर ऐसा (ना-ना) नहीं करना। ज्ञानी की कोई बात अंतर की आवे, ऐसा (ना-ना) नहीं करना और समझे के बिना ऐसा (हाँ-हाँ) भी नहीं करना। अनुभव से प्रमाण करना। आहाहा!

तो आचार्य भगवान १३ नंबर की गाथा में फ़रमाते हैं....और एक बात रह गयी अभी कि मिथ्यात्व का स्वरूप क्या है? कि कोई-कोई जीव (मिथ्यात्व का) विचार करता है। बाकी पुण्य और पाप, पुण्य और पाप, परस्पर चर्चा भी वो, चर्चा भी वो (ही) करते हैं। मिथ्यात्व क्या है, वो तो चर्चा ही नहीं चलती है। वो तो सोनगढ़ में और सोनगढ़ के ममुक्षु में चलती है (वो बात)। बाकी तो कोई जगह

पर (चलती नहीं है)। आहाहा!

ये पंचाध्यायी है भाग २, २ भाग है, २ नंबर का भाग। पंचाध्यायी दूसरा भाग, उसमें १०२८ गाथा है। उसमें वो फ़रमाते हैं राजमल जी, कविराज, वो भी कवि हैं। अन्वयार्थ। वो संस्कृत है ना? मैं संस्कृत जानता नहीं हूँ, इसलिए मैं पढ़ता नहीं हूँ। तो भी,

सर्वसंसारिजीवानां मिथ्याभावो निरंतरम् ।
स्याद्विशषोपयोगीह केषान्चित् संज्ञिनां मनः ॥१०२८॥

अन्वयार्थः- जो कि इस जगत में, इस जगत में, अर्थात् जगत में रहे हुए संसारी जीव, **इस जगत में सभी संसारी जीवों को,** सभी संसारी जीवों को **निरंतर मिथ्यात्व-भाव रहता है।** निरंतर शब्द (के) ऊपर वजन है, धारावाही, सम्यग्दर्शन नहीं हो तब तक। लेकिन अशुभ की क्रिया के समय तो मिथ्यात्व रहे तो ठीक है लेकिन शुभभाव के वक्त भी मिथ्यात्व साथ रहता होगा? इसका जीव विचार करता नहीं। आहाहा!

अशुभ तो पाप-भाव है, लेकिन शुभभाव के समय भी जब तक सम्यग्दर्शन नहीं (है) तब तक मिथ्यात्व का परिणाम है और ये एकांत पाप है। व्यवहारनय से दो भेद नहीं। पुण्य-पाप के निश्चयनय से तो भेद नहीं, एक ही जाति है, आश्रवतत्त्व है। लेकिन व्यवहारनय से देखने में आये तो पुण्य और पाप दो भेद पड़ते हैं। लेकिन मिथ्यात्व के तो दो भेद पड़ते नहीं, **निरंतर मिथ्यात्व रहता है।** आहाहा! कोई भी क्रिया, उसको खोलना नहीं है, समझ लेना। कोई भी क्रिया शुभाशुभ की हो, **उसमें निरंतर मिथ्यात्व-भाव रहता है। तो भी,** भले रहे तो भी, **तो भी, कोई-कोई संज्ञी जीवों का मन,** असंज्ञी (को) तो विचार करने की शक्ति नहीं है, उसको तो बाद कर दिया। **कोई-कोई संज्ञी जीवों का मन, मिथ्यात्व को जानने में विशेष उपयोगवान होता है।** उपयोगवान तो होता है ऊपर-ऊपर से, यह मिथ्यात्व, यह मिथ्यात्व, यह मिथ्यात्व। लेकिन विशेष उपयोगवान होता है कि मिथ्यात्व के परिणाम अर्थात् क्या? आहाहा! और मिथ्यात्व की उत्पत्ति कैसे होती है? और मिथ्यात्व का अभाव कैसे होता है? मिथ्यात्व को पाप जाने तो उसमें त्यागबुद्धि आइए। लेकिन मिथ्यात्व को तो कोई गिनती ही नहीं। हिंसा, झूठ, चोरी, छोड़ो। अहिंसा का परिणाम करो। आहाहा! ये क्रम भंग किया है, अनुक्रम है। पहले मिथ्यात्व जाता है, बाद में अव्रत, बाद में कषाय और बाद में योग। ऐसा अनुक्रम है, क्रम भंग नहीं है। मिथ्यात्व रह जाता है और व्रत आ जाता है, चारित्र (आ जाता है), ऐसा तीन काल में होता नहीं है। आहाहा! **संज्ञी जीवों का मन मिथ्यात्व को जानने में किसी वक्त विशेष उपयोगवान होता है।**

भावार्थः- संसारी जीवों की दशा, अनादिकाल से मिथ्यात्वरूप है। उसमें से असंज्ञी जीवों का ज्ञानोपयोग तो मिथ्यात्व क्या है, यह विचार या समझ सकता नहीं। बाकी सभी संज्ञी जीवों को प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वों का विचार करके, उसका यथार्थ निर्णय करने (के) योग्य, ज्ञान का क्षयोपशम तो होता (ही) है। उघाड़ तो है संज्ञी पंचेन्द्रिय को **लेकिन उसमें से भी,** आहाहा! नवतत्त्व को जानने में से भी, **परंतु उसमें से भी कोई ही संज्ञी जीव, मिथ्यात्व के स्वरूप को समझने के लिए प्रयत्न करता है।** मिथ्यात्व के स्वरूप को जानने का प्रयत्न करे, तो (मिथ्यात्व में) दोष लगे, तो दोष टालने का उपाय कर सकता है। लेकिन दोष ही नहीं लगे. आहाहा! हाथ ऊँचा मैं करता

हूँ, उसमें क्या दोष लगा? आहाहा! मिथ्यात्व का दोष लगा! आहाहा! जीव-हिंसा हो गयी। किसी को मारा तो नहीं? आहाहा! तेरे चेतन-प्राण लुट गये हैं, तू ही मर गया। तेरे से तेरे परिणाम की हिंसा हुई। भगवान आत्मा तो अनादि-अनंत विराजमान है, वह तो हिंसा के या अहिंसा के परिणाम - वहाँ तक पहुँचता नहीं। ये तो त्रिकाल शुद्ध है, अनादि-अनंत। ३९:५७ STOP

और कोई गुरुदेव के वक्त में व्याख्यान में आता था, आत्मधर्म में भी आया है, ११ भागों में भी आया है। वहाँ तो बहुत प्रश्न आते थे ना उनकी हाज़िरी में। ऊपर से सभी प्रश्न ऐसे आते थे कि जब आत्मा (का) परिणाम अशुद्ध होता है, मिथ्यात्व तो मलिनभाव है ना? ये कोई पवित्र परिणाम नहीं। जब मिथ्यात्व, अशुद्ध परिणाम होता है, तब आत्मा अशुद्ध हो जाता है? ऐसे बहुत प्रश्न ऊपर से आते थे. पेपर में, बहुत आते थे, शुद्ध रह सकता नहीं, अशुद्ध के समय अशुद्ध हो जाता है? गुरुदेव ने फ़रमाया है कि बिल्कुल अशुद्ध होता नहीं आत्मा। निज-भाव को छोड़ता नहीं और पर-भाव में तीन काल में न जाये। आत्मा और आश्रव तो स्वभाव से भिन्न हैं। माने तो भी भिन्न और न माने तो भी भिन्न। इसलिए आत्मा तीनों काल शुद्ध रहता है। एक समय भी, मिथ्यात्व अवस्था में भी, मिथ्यात्व की पूरी अशुद्धता के सद्भाव में भी, संयोग में भी स्वभाव तीनों काल शुद्ध रहता है। उसका अवलम्बन लेने से मिथ्यात्व नाम का दोष टल जाता है। फिर स्वरूप में लीनतारूप चारित्र आये बिना रहता नहीं। चारित्र बिना मोक्ष नहीं।

अभी नियमसार में आया कि सम्यग्दर्शन तो कोठी में रहे हुए बीज के समान है। उसकी क्या क़ीमत? एक दाने में से कहीं १००० दाने नहीं होते। उगाये तो, उगाये तो होते हैं एक दाने के १००० दाने। इसलिए चारित्र, वह ही वास्तव में धर्म है। आहाहा! लेकिन जिसको मिथ्यात्व है, उसको प्रथम यही उपदेश देते हैं ज्ञानी कि प्रथम जो जाये, टले (उसको टाल)। और संसार अवस्था में रहने पर भी उसको सम्यग्दर्शन हो सकता है। आहाहा! गुजराती हो गया, रतनलाल जी साहब ने कहा। ठीक! टोक दिया। अभी हिंदी चले।

अनंतकाल से इस दोष को, मिथ्यात्व नाम के दोष को, पाप को पाप, कोई जानता है। बाकी हिंसा, झूठ, चोरी कोई अनीति करे, कोई व्यभिचार करे, कोई माँसाहार, आहाहा! कोई कंदमूल खाए, पाप, पाप, पाप, पाप। ये तो पाप है ही, वो पुण्य नहीं है। उस पाप को पुण्य की स्थापना करने की बात नहीं है। लेकिन एक दूसरा छुपा (हुआ) पाप अंदर में है। उसके ऊपर तेरी नज़र जाती नहीं है। नज़र जाने से उसके नाश का उपाय भी कर सकते हैं। तो इसमें ये १३ नंबर की गाथा चलती है, अभी थोड़ा टाईम बाक़ी है।

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, पाप आया ना? ये पाप २ प्रकार का है। एक चारित्र गुण की, अंदर पर्याय में कषाय की तीव्रता हो, उसका नाम भी पाप है। और जो स्वरूप को भूल जाता है, अन्यथा जानता है जीवतत्त्व को अन्यथा मानता है, जानता है, अकर्ता को कर्ता मानता है, अभोक्ता को भोक्ता मानता है। प्रश्न आया था कि ये दुःख आता है, तो दुःख को कौन भोगता है? कि जीव के परिणाम में दुःख होता है तो जीव भोगता है, पुदग़ल भोगता नहीं है। मगर वो, भोगती है पर्याय, आत्मा तो एक समय अभोक्ता रह जाता है। एक समय मात्र (भी) पर्याय (के) दुःख को भोगवे, आत्मा अभोक्ता स्वभाव

को छोड़कर, दुःख में तन्मय होकर दुःख को भोगवे, तीन काल में बननेवाला नहीं है। अज्ञानी का जो ज्ञायकभाव है, वो भी, स्वभाव दृष्टि से देखो (तो), अरे! देखने के पहले विचारो, तो भी वो दुःख का भोक्ता नहीं है। वो तो अभोक्ता है। हाँ! परिणाम में दुःख है, उस भोक्ता-धर्म को जानता है। अभोक्ता स्वभाव को जानते-जानते, भोक्ता-धर्म को, पर्याय का भोक्ता-धर्म है, उसको जानता है और अकर्ता स्वभाव को जानते-जानते, पर्याय (को जानता है)। राग (का) कर्ता है पर्याय, पर्याय में राग होता है। वो कर्ता-धर्म, पर्याय का कर्ता-धर्म है, मेरा कर्ता-धर्म नहीं। मैं तो अकारक-अवेदक हूँ। उस वक्त जुदा है अकारक, अकर्ता और कर्ता, दो सत् अलग-अलग हैं। आहाहा! और नय विविक्षा से देखो तो समझ में आवे। प्रमाण से जुदी बात और नय से जुदी बात है। प्रमाण के बाहर जाना नहीं और प्रमाण में अटकना नहीं। आहाहा!

व्यवहारनय के कथन तो बहुत आवें, आत्मा राग का कर्ता है और दुःख का भोक्ता है। पुदगल कर्ता नहीं है और भोक्ता (भी) नहीं है। ठीक है वो बात। मगर आत्मा शब्द लगाया, तो अनात्मा कर्ता-भोक्ता है कि आत्मा कर्ता-भोक्ता है? थोड़ा विचार तो कर। आहाहा! आत्मा आश्रव के समय भी आश्रव से जुदा (है), पवित्र परमात्मा, भगवान आत्मा। आहाहा! कुंदकुंद की वाणी सर्वज्ञ भगवान की वाणी है। सर्वज्ञ भगवान की वाणी, तीर्थंकर की वाणी और कुंदकुंद की वाणी में कोई फेरफ़ार नहीं है। जिनका तीसरा नाम है। आहाहा! शोध करते-करते समयसार शास्त्र हाथ में आ गया गुरुदेव के। शोध चलती थी, कहीं संतोष नहीं (मिला)। ३२ आगम देखे अनेक बार, ४५ आगम अन्यमति के देखे, तो भी उनको संतोष नहीं हुआ। जब समयसार हाथ में आया। आहाहा! ज़वेरी ने, पारखी ने परख कर लिया। वो तो अशरीरी होने की विधि इसमें है। तो एक शास्त्र एक पुरुष के हाथ में आया, एक समयसार, तो देखो ये सब, ये जाहोजलाली (वैभव) किसकी है? इस पुरुष (गुरुदेव) की है। आहाहा! उनकी छत्र-छाया में ये सब होता है। ये सारा संकुल का नाम क्या है? कहान-नगर। ये सब कहान, कहान और कहान ही है चारों तरफ, और सबके अंदर भाव में भी कहान विराजमान हैं। आहाहा! उपकारी (के उपकार को), वो सज्जन उपकार को भूलता नहीं है। मैंने समझ लिया उपादान से कार्य होता है ना? निमित्त क्या करे? गुरुदेव कहते हैं - अरे भैया! आहाहा! अभिमान है तेरा। कार्य तो उपादान से होता है, मगर उस समय, योग्य, अनुकूल निमित्त, ये ज्ञानी की वाणी होती है। ज्ञानी की वाणी के लक्ष से सम्यग्दर्शन नहीं होता है। आत्मा के लक्ष से होता है। मगर पूर्व-भूमिका में ज्ञानी की वाणी या जिनवाणी निमित्त होती है।

तो ये पाप के दो प्रकार। आश्रव, आश्रव के चार भेद - मिथ्यात्व, अविरत, कषाय और योग। वो पुण्य-पाप में योग नहीं आया। पुण्य-पाप में योग नहीं आया। मगर आश्रवतत्त्व में तो योग (है)। योग के दो भेद, सकषाय योग और अकषाय योग। तेरहवें गुणस्थान में योग है लेकिन अकषाय है। इसलिए वो आश्रव में चार समाविष्ट हो जाते हैं। पुण्य-पाप में योग नहीं आता है। आश्रव, आश्रव में आत्मा नहीं है।

कुमारी का प्रश्न है ना? कि आत्मा कैसा है? और कहाँ रहता है? वो मलिन परिणाम में भगवान पवित्र परमात्मा, अपवित्र, ऐसे आश्रवतत्त्व में रहता नहीं है। और संवर-निर्जरा, एक समय की पर्याय, निर्मल, वो निर्मल पर्याय जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र का, रत्नत्रय का परिणाम है, उसमें रहता है। उसमें कथंचित् रहता है, सर्वथा उसमें रहता नहीं है। मगर आश्रव में (आत्मा) नहीं रहता है, तो कहाँ रहता है?

कि संवर में (रहता है)। क्रोध में नहीं रहता है, तो ज्ञान में आत्मा रहता है, ऐसा संवर अधिकार में लिया है। उपयोग में उपयोग है, क्रोधादि में उपयोग नहीं है। आप लेते हैं ना गाथा, वो ही चलती है।

संवर-निर्जरा, एक समय की पर्याय, व्यवहारनय का विषय है, उपादेय नहीं है। संवर, संवर, संवर का भेद, पर्याय, उपादेय नहीं है, आश्रय करने जैसी चीज़ नहीं है। आश्रय करने जैसी चीज़ नहीं है इसलिए हेय भी है। नवतत्त्व के भेद हेय हैं। अच्छा! अभी संवर ज्ञेय है कि नहीं? संवर की एक समय की पर्याय (को) विचार में लिया, उसको भले ही संवर प्रगट न हो, लेकिन ये संवर की पर्याय, संवर की पर्याय, संवर की पर्याय, उसका लक्ष भेद ऊपर जाता है। अभेद से छूट जाता है, मिथ्यात्व का परिणाम हो जाता है। साथ में शुभभाव तो, तत्त्व के विचार में शुभभाव होता है।

एक दफे की बात है। ये पाटनी जी के बहनोई हैं ना लाडनुं, लाडनुं। अभी गुजर गए ना बहनोई आपके? किशनगढ़, किशनगढ़, लाडनुं नहीं, किशनगढ़ में। तो मैं किशनगढ़ एक दफे गया। वो हीरालाल जी के बेटे की लगन (शादी) थी। तो उनके वहाँ ठहरे थे तो उन्होंने बात (की)। कोई तत्त्व की बात तो निकले ना? भेदज्ञान से भले आत्मा का अनुभव न होवे, तो शुभभाव तो होता है ना? आहाहा! भैया! आप शुभभाव को क्यों याद करते हो? शुभभाव से भिन्न आत्मा है और आत्मा का ज्ञान होता है। शुभभाव होता है, तब आत्मा का ज्ञान होता है, ऐसा विचार करो ना। आहाहा! आत्मा के अनुभव के पहले ही आत्मा का ज्ञान होता है, सबको। आबालगोपाल सबको। आहाहा! उपयोग लक्षण है कि नहीं? उपयोग में स्वच्छता है, स्वच्छता। आहाहा! निगोद के जीव में उपयोग है, उसमें आत्मा निरंतर अनुभव में आता है। अनुभव में आता है यानि प्रतिभास होता है। अनुभव यानि अनुभूति और सम्यग्दर्शन और आनंद की बात नहीं है। निरंतर, प्रत्येक समय, प्रत्येक जीव को उपयोग प्रगट होता है और उस उपयोग में भगवान आत्मा, तन्मय, तन्मयरूप से जानने में आता है। आत्मा अनंत गुण से तन्मय है और उपयोग आत्मा से तन्मय होकर जानता है।

ऐसा प्रश्न आया १७वीं-१८वीं गाथा के बाद, आचार्य भगवान ने कहा कि आबालगोपाल सबको (भगवान) आत्मा अनुभव में आता है। तो प्रश्न आया, शिष्य ने प्रश्न किया कि आपने कहा कि आत्मा निरंतर अनुभव में आ रहा है, तो आत्मा तो ज्ञान से तन्मय है, आत्मा तो ज्ञान से तन्मय है। तो फिर आप कहते हैं, फ़रमाते हैं कि ज्ञान का सेवन करो। तो वो तो निरंतर ज्ञान का सेवन करता ही है, तन्मयरूप से जानता (ही) है? ऐसा प्रश्न आया। तो आचार्य भगवान ने फ़रमाया कि तेरी बात इतनी तो सही है कि ज्ञान आत्मा को तन्मय होकर जानता है, (मगर ऐसा तू) मानता नहीं है, मानता नहीं है। माने तो सम्यग्दृष्टि। आहाहा! बैठना ही कठिन। आहाहा! बैठना ही कठिन। राग से तन्मय, राग से तन्मय, राग से तन्मय आहाहा! जड़ से चेतन (को) तन्मय मानता है। उपयोग से तन्मय होकर ज्ञायक भगवान आत्मा जानने में आता है। वो पर जानने में आता है और स्वपरप्रकाशक, वो बात गौण करके, उपयोग में, आत्मा ज्ञान में, ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है, तन्मयरूप से।

शिष्य ने प्रश्न किया कि आत्मा ज्ञान से तन्मय है, तो फिर ज्ञान को सेवो, सेवन करो, (ऐसा) क्या आप उपदेश देते हैं? कि तेरी एक बात तो सही है कि उपयोग से तो आत्मा अनन्य है। राग से तो त्रिकाल अन्य है, माने तो भी अन्य है और न माने तो भी अन्य। आहाहा! मगर एक समय भी तू ज्ञान को

सेवता नहीं है, क्योंकि ज्ञान से (तू) अनन्य है ऐसा तू कहाँ मानता है? भाषा है, विकल्प है, इंद्रियज्ञान का जाल है, उसमें अनुभव होता नहीं है। आहाहा! तो वो फ़रमाते हैं कि प्रत्येक समय, प्रत्येक जीव को उपयोग प्रगट होता है। उपयोग लक्षण है कि नहीं? लक्षण लक्ष्य को प्रसिद्ध करे कि लक्षण अलक्ष्य को प्रसिद्ध करे? जो लक्षण लक्ष्य को प्रसिद्ध न करे और अलक्ष्य को प्रसिद्ध करे, तो ये आत्मा का लक्षण ही नहीं है, अज्ञान हो गया। आहाहा!

ऐसे संवर, निर्जरा एक समय की पर्याय है, उपादेय नहीं है। प्रगट करने के लिए उपादेय है वो अलग बात है। आश्रय करने जैसी चीज़ नहीं है। और एक समय की पर्याय उपादेय क्यों नहीं है? कि एक समय की पर्याय में अनंत गुण आते नहीं हैं। 53:27 STOP जीवतत्त्व का स्वरूप तो बताया संतो ने। **गुणसमुदायोद्रव्यम्, गुणसमुदायोद्रव्यम्,** ये दृष्टि का विषय है। **गुणपर्ययवत् द्रव्यं** (मोक्षशस्त्र, अध्याय 5, सूत्र ३८)। ये ज्ञेय है, ज्ञान का विषय है। ये ध्येय नहीं है। आहाहा! **गुणसमुदायोद्रव्यम्।** ये तो आत्मा है भगवान। एक समय की पर्याय में अनंत गुण आते नहीं हैं। अनित्य है, नित्य नहीं है, अनित्य है। कर्म सापेक्ष है, निरपेक्ष नहीं है। आत्मा, भगवान आत्मा तो कर्म से निरपेक्ष और संवर-निर्जरा (की) पर्याय से भी निरपेक्ष परमात्मा है। पहले निरपेक्ष का ज्ञान कर, बाद में सापेक्ष का व्यवहार कहने में आता है। निरपेक्ष के ज्ञान बिना अकेला व्यवहार सापेक्ष का ज्ञान तो अज्ञान है भैया। कुछ उसमें माल है नहीं। ऐसा बंध और मोक्ष, बंध की पर्याय, जिसमें अनंत गुणात्मक आत्मा है नहीं।

कहाँ रहता है? कि आत्मा तो स्वभाव में रहता है। कि नवतत्त्व, विभाव में रहता नहीं है। आहाहा! स्वभाव छोड़कर विभाव में जाये, ध्रुव परमात्मा अनित्य पर्याय में चला जाये, तीन काल में बननेवाला नहीं है। वो पर्याय में आता नहीं है मगर पर्याय में उसका सामर्थ्य कितना है, उसके सामर्थ्य का ज्ञान आ जाता है, मगर द्रव्य पर्याय में आता नहीं है। तो मोक्ष की पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय भी व्यवहारनय का विषय है। वह जीवतत्त्व नहीं है, वो मोक्षतत्त्व है। मोक्षतत्त्व की जीवतत्त्व में नास्ति है इसलिए जीवतत्त्व की अस्ति रहती है। क्या कहा? यह जीवतत्त्व जो सामान्य है, मोक्षतत्त्व विशेष है पर्याय, वो (उस) त्रिकाली सामान्य में क्षणिक विशेष जो पर्याय है, उसकी नास्ति है, उसका नाम अनेकांत-अमृत है। उसमें अनुभव हो जाता है। अनुभव होने के बाद अनंतधर्मात्मक आत्मा, पूरा आत्मा, वो ज्ञान में ज्ञेय होता है, वो अनेकांत तो फल है। अस्ति-नास्ति अनेकांत, वो भेदज्ञान परख है। और जब अनेकांत का, भेदज्ञानपूर्वक आत्मा का अनुभव होता है तो सम्यग्ज्ञान में अनंतधर्मात्मक पूरा आत्मा, ज्ञान में ज्ञेय हो जाता है। जैसे केवलज्ञान का विषय है ऐसा श्रुतज्ञान का अंदर में आ जाता है, कोई धर्म बाक़ी नहीं है। धर्मी, धर्म में जानने में आ जाता है। धर्मी यानि अनंतधर्मवाला, इसमें अनंत गुण, अनंत पर्याय, अनंत अपेक्षित धर्म, सब ज्ञान में ज्ञेय हो जाता है। मगर ज्ञान में ज्ञेय होने पर भी वो ध्यान का ध्येय होता नहीं है। परिणामी आत्मा ज्ञान का ज्ञेय है मगर ध्यान का ध्येय नहीं है। ध्यान का ध्येय तो अपरिणामी है।

आहाहा! अपरिणामी, कहाँ से आया? वो तो सांख्यमत हो जायेगा। भैया! शांति से सुन। ये आचार्य भगवान की वाणी है, किसी के घर की वाणी नहीं है। सोगानी जी ने अपने घर का शब्द नहीं निकाला है। आत्मा में से आयी हुई (बात है) और आत्मा से आयी हुई बात आगम से मिल जाती है।

अरे! कभी आगम में न दिखे तो भी प्रमाण करना, ऐसे मस्ती में कह देते हैं ज्ञानी, मस्ती में, जभ मस्ती अनुभव की है। आहाहा!

उनमें, ये नवतत्त्व, जो व्यवहारनय का विषय पर्याय है, ये पर्याय का धर्म है, जीव का धर्म नहीं है। पहला जीव है ना? वो तो जीव है, (वो) व्यवहार जीव है। दस प्रकार के प्राण से जीता है वो जीव है, वो सच्चा जीव नहीं है, असत्यार्थ जीव है, व्यवहार जीव है, झूठा जीव है, कहने के लिए है। आहाहा! इतना-इतना व्यवहार का निषेध करें! अरे! व्यवहार का निषेध करे तो निश्चय की प्राप्ति हो जायेगी। घबराने की ज़रूरत नहीं है।

एक दफे मुंबई में ऐसा आया प्रश्न, शांतिभाई के घर, कि समर्थ आचार्य भगवान ने व्यवहारनय दर्शाया है। अच्छा! बराबर है। दर्शाया है ऐसा। खुश हो गया, अन्यमति था। 'अन्यमति' समजे? कौंस में, आहाहा! व्यवहारनय दर्शाया है, समर्थ आचार्य भगवान ने व्यवहारनय दर्शाया तो है। मैंने कहा, बराबर, दर्शाया है, मगर निषेध करने के लिए दर्शाया है। दूसरे दिन आया ही नहीं वो। दूसरे दिन कहाँ से आवे? व्यवहार का पक्ष, व्यवहार का पक्षवाला है ना, वो निश्चयनय का निषेध करता है तो ही व्यवहार का पक्ष टिकता है। अरे! हम तो निश्चयनय का निषेध करते ही नहीं हैं, स्वभाव का निषेध करते ही नहीं हैं। स्वभाव के निषेध बिना व्यवहारनय का पक्ष रहता ही नहीं है, मिथ्यात्व, पक्ष। व्यवहार का पक्ष, वह मिथ्यात्व। व्यवहार होता है ज्ञानी को, व्यवहार का पक्ष होता नहीं है। व्यवहार का ज्ञाता है मगर व्यवहार का पक्ष होता नहीं है। आहाहा!

ये तो सब गुरुदेव की कृपा है, ये सब गुरुदेव की देन है, हम तो कुछ जानते नहीं थे। जब मिला, आहाहा! तब ख्याल आ गया, ये पुरुष कोई जुदा है। हमने तो दिगम्बर धर्म नाम ही नहीं सुना था, स्थानकवासी में जन्म था।

उनमें, यानि नौ प्रकार के जो भेद हैं, वो भेद में ही अभेद छुपा है। दूध में ही घी है, पानी में तो घी है नहीं। पानी में से घी निकलता है? आहाहा! और दूध स्वयं घी हो जाता है? मेहमान आया, तो लड्डू बनाया चूरमे का। इधर चूरमे का लड्डू बहुत अच्छा बनाया था, सब बोलते थे (तो) खाया। शक्कर का जुदा और गुड़ का जुदा, दो लड्डू अलग-अलग जाति के। नहीं! सुना है, सुना है। तो दूध है, तो दूध में वो सेंको और लड्डू बन जाये? कभी बननेवाला नहीं है। उस दूध में एक प्रक्रिया करनी पड़ती है, प्रक्रिया। ये नवतत्त्व में जो शुद्धात्मा छुपा है, वो खींचने के लिए उसको नवतत्त्व का भेद, उसको जानना बंद कर देना है। जब बंद करे, ज्ञेय फिर जाता है। पर्याय ज्ञेय होती थी, और ज्ञेयहोती, अकेली ज्ञेय नहीं होती थी,उस ज्ञेय में आत्मबुद्धि हो जाती है। इसलिए ज्ञेय भी नहीं है, वो तो निमित्त बन जाता है। मगर जब ज्ञेय फिरता है, परिणाम का लक्ष छूटता है, द्रव्य सामान्य का लक्ष आता है, तो सारा ज्ञेय फिर जाता है।

प्रवचनसार में फ़रमाया कि आत्मा की दो आँख हैं, तीसरी आँख तो है ही नहीं। एक निश्चयनय और एक व्यवहारनय। पर को जानने वाली आँख - चक्षु, तो है ही नहीं, डिस्काउंट (discount) कर दिया। प्रमाण के बाहर तो देखने की आँख ही नहीं है। हाँ! प्रमाण में द्रव्य और पर्याय है, तो दो को देखने की बात है। आँख दो हैं मगर एक चक्षु तो अनादिकाल से (बंद है), उसको व्यवहार का पक्ष हो

गया ना? व्यवहार का पक्ष क्यों हुआ? निश्चयनय का निषेध करके व्यवहार का पक्ष आता है। निश्चयनय का पक्ष रखकर व्यवहार का पक्ष कभी तीन काल में आता नहीं है। और निश्चयनय के पक्ष में भी कभी साध्य की सिद्धि होती नहीं है, तो व्यवहार के पक्ष में तो दिल्ली बहुत दूर है। भाईसाहब! कहते हैं रमेश, दिल्ली बहुत दूर है। आहाहा!

ऐसे उसमें नवतत्त्व के भेद हैं, अभेद में भेद दिखता नहीं है। आहाहा! अभेद में भेद (दिखता नहीं है)। अभेद की जब दृष्टि अंदर में आती है, सामान्य स्वभाव को निहारता है ज्ञान, अवलोकता है आत्मा को, परमात्मा को, भेटता (मिलता) है उपयोग, तब अभेद में भेद दिखता नहीं है। ये पर्याय का भेद है ही नहीं तो दिखे कहाँ से? अरे! गुण तो हैं लेकिन गुण-भेद दिखता नहीं है। पर्याय तो है ही नहीं तो दिखने की बात नहीं। गुण तो हैं। गुण तो हैं। ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र, ऐसा भेद का लक्ष रहता नहीं है। पर्याय तो है ही नहीं। आहाहा! तो उसमें से नौ प्रकार की पर्याय के भेद में **एकत्व प्रगट करनेवाला,** नौ में से एक निकालो, नौ में से एक निकालो। दूध में से घी निकाल दो। अच्छा! घी निकाला, बाद में छाछ संग्रह करने जैसी है? आहाहा! ये तो फेंक देते हैं छाछ। पहले काल में तो फ़्री (free) देते थे, अभी तो पैसे लेते हैं। आहाहा! **एकत्व प्रगट करनेवाले, भूतार्थनयसे एकत्व प्राप्त करके**...देखो! आहाहा!

कल कहा था कि मैंने तो थोड़े शास्त्र, दिगंबर शास्त्र में भी थोड़े पढ़े हैं, ऐसा ज़्यादा अध्ययन नहीं है, बहुत। (कोई) हज़ारों शास्त्र मैंने नहीं देखे हैं। मगर जितने शास्त्र मैंने देखे हैं उसमें भूतार्थनय से नवतत्त्व को जानने की बात हमनें कहीं पढ़ी नहीं। एक समयसार में आयी है कि भूतार्थनय से नवतत्त्व को जानने से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! ऐसे तो बात चलती है कि नवतत्त्व का श्रद्धान, सात-तत्त्व, नवपदार्थ का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। मगर अगला जो शब्द है, भूतार्थनय, वो निकल गया। आहाहा! परिपाटी चली मगर भूतार्थ शब्द छूट गया। हाँ! गुप्तपने तत्त्वार्थसूत्र में है। उसमें एकवचन कहकर, उसमें रखा है मगर, आहाहा! ये तो भूतार्थ शब्द जो आया, ये क्या लिखा (है) भूतार्थनय से नवतत्त्व को जाना। नवतत्त्व तो भेद हैं, वो व्यवहारनय का विषय है, अभूतार्थनय का विषय है। अभूतार्थनय के विषय को भूतार्थ से कैसे जानें? कि मेरे से परिणाम होता नहीं है। परिणाम सत् अहेतुक है। उसको सत् देखने से दृष्टि वहाँ से हटकर त्रिकाली द्रव्य (के) ऊपर आ जाती है।

ॐ